श्री साईसच्चरित

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। अध्याय ३७ वा।।

।। श्रीगणेशाय नमः।। श्रीसरस्वत्यै नमः।। श्रीगुरुभ्यो नमः।। श्रीकुलदेवतायै नमः।। श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः।। श्रीसद्गुरुसाईनाथाय नमः।। धन्य धन्य साईचें चरित। धन्य तयाचें नित्यचरित। क्रियाही अकळ अत्यद्भुत। इत्थंभूत अकथ्य।।१।। अगाध त्याचें सच्चरित। धन्य तयाचें जीवनवृत्त। धन्य धन्य तें अप्रतिहत। असिधाराव्रत तयाचें।।२।। कधीं ब्रह्मानंदें उन्मत्त। कधीं ते निजबोधें तृप्त। कधीं सर्व करूनि अलिप्त। ऐसी अनिश्चित ती स्थिती।।३।। कधीं सर्वप्रवृत्तिशून्य। तरी तो नव्हे निद्रासंपन्न। निजस्वार्थी ठेवूनि मन। सदा सावधान निजरूपीं।।४।। कधीं सागरासम प्रसन्न। परी तो दुरंत दुर्विगाह्य गहन। कोणा हें अगाधरूप निरूपण। यथार्थपणे करवेल।।५।। पुरुषांसवें धरी बंधुता। स्त्रिया तयाच्या बहिणी माता। ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता। ठावा समस्तां सर्वदा।।६।। ऐसियाचे सत्संगतीं। प्राप्त झाली जी मति। तीच राहो निश्चल स्थिति। निधनप्राप्तीपर्यंत।।७।। उदंड व्हावी सेवावृत्ति। चरणीं जडावी अनन्य भक्ति। भगवद्भाव सर्वांभूतीं। अखंड प्रीति तन्नामीं।।८।। पाहोनि त्याच्या एकेक कृती। जे जे कारण शोधूं जाती। ते ते कुंठित होऊनि अंतीं। स्वस्थचि बैसती तटस्थ।।९।। कितीएक स्वर्गसौख्या झगडती। वानिती अत्यंत स्वर्गाची महती। ते भूलोका तुच्छ मानिती। मरणाची भीति म्हणती इथें।।१०।। परी अव्यक्तांतूनि आकारा येती। तियेसचि म्हणती 'व्यक्त' स्थिति। पुढें तीच प्रवेशतां अव्यक्तीं। 'मृत्यु' म्हणती तियेस।।११।। अधर्म अज्ञान राग द्वेष। इत्यादिक हे मृत्युपाश। यांचें उल्लंघन करी जो अशेष। त्यासीच प्रवेश स्वर्लोकीं।।१२।। स्वर्ग स्वर्ग तो काय आणिक। वैराज तोच स्वर्गलोक। विराट आत्मस्वरूप देख। मानसदुःखविवर्जित।।१३।। जेथें नाहीं रोगादि निमित्त। नाहीं चिंता व्याधी दुःख। जेथें न क्षुधातृषाकुलित। कोणी न व्यथित जराभयें।।१४।। जेथें नाहीं मृत्युभय। नाहीं विधि-निषेध द्वय। जीव वावरे अत्यंत निर्भय। तीच कीं दिव्य स्वर्गस्थिति।।१५।। जें आब्रह्मस्थावरान्त। पूर्ण स्थावर-जंगमांत। तेंचि तत्त्व परत्रीं वा येथ। नानात्वविरहित तेंच तें।।१६।। असतां संसारधर्मवर्जित। होतां उपाधिसमन्वित। तेंचि आभासे अब्रह्मवत। अविद्यामोहित जीवास।।१७।। परब्रह्म तें मजहूनि भिन्न। तें मी नव्हे मी तों आन। ऐसें जयाचें भेदज्ञान। तो मरणाधीन सर्वदा।।१८।। जननापाठीं लागलें मरण। मरणापाठीं पुनर्जनन। हें संसृतिचक्र परिवर्तन। पाठीस चिरंतन तयाच्या।।१९।। दुष्कर यज्ञतपोदान। इंहीं जयाचें होय आपादन। तें नारायणपद स्मृतिविहीन। स्वर्गायतन किमर्थ।।२०।। केवळ विषय भोगाचें स्थान। नलगे आमुतें स्वर्गभुवन। जेथें न गोविंदनामस्मरण। काय कारण तयाचें।।२१।। स्वर्गा जा अथवा नरका। फरक नाहीं विषयसुखा। इंद्रा वा गर्दभा देखा। सुख विलोका एकचि।।२२।। इंद्र नंदनवनीं घोळे। तोच रासभ उकिरडां लोळे। सुख पहातां एकचि तुळे। नाहीं तें वेगळें लवमात्र।।२३।। जेथूनि पुण्यक्षयें पतन। किंनिमित्त तदर्थ यत्न। त्याहूनि बरवें एथील जनन। महत्त्वें गहन भूलोक।।२४।। जेथें आयुष्य कल्पवरी। काय त्या ब्रह्मलोकाची थोरी। अल्पायुष्य हो का क्षणभरी। भूलोकपरी आणीक।।२५।। क्षणभंगुर आयुष्यपण। केलें कर्म एक क्षण। करी जो सर्व ईश्वरार्पण। अभय स्थान पावे तो।।२६।। जेथें न भगवद्भक्त जन। करिती न हरिगुरुकथावर्णन। संगीत-नृत्य-भगवत्पूजन। तें काय स्थान कामाचें।।२७।। ब्रह्मात्मैकत्व-विज्ञान। आत्यंतिक निःश्रेयससाधन । तें तों या स्वर्गाहूनि गहन। भूलोक हें स्थान तयाचें।।२८।। कायावाचामनेंकरून। करा पंचही प्राण समर्पण। निश्चयात्मक बुद्धीहीन लीन। होवो गुर्वधीन सर्वस्वीं।।२९।। एवं सद्गुरुसी शरण जातां। भवभयाची कायसी वार्ता। प्रपंचाची किमर्थ चिंता। असतां निवारिता सर्वस्वीं।।३०।। अविद्येचा जेथें वास। तेथें पुत्र-पश्वादिपाश। संसारचिंता अहर्निश। नाहीं लवलेश सुविचार।।३१।। अविद्या सर्वां मूळ कारण। उपस्थापी नानात्वविंदान। आचार्यागम-संस्कृतज्ञान। तदर्थ संपादन करावें।।३२।। होतां अविद्यानिवर्तन। उरे न अणुमात्र नानात्वज्ञान। चुके तयाचें जन्ममरण। एकत्वविज्ञान या मूळ।।३३।। धरी जो अत्यल्प भेददृष्टी। पडेल जन्ममरणाचे कष्टीं। तयास विनाश आणि सृष्टी। लागली पाठीं सदोदित।।३४।। 'श्रेय' हाचि जिचा विषय। तीच ती विद्या निःसंशय। जिचा विषय केवळ 'प्रेय'। अविद्या नामधेय तियेस।।३५।। मृत्यु हेंच मोठें भवभय। तयापासूनि व्हावया निर्भय। घट्ट धरा गुरुचरणद्वय। देतील अद्वयबुद्धीतें।।३६।। जेथें द्वितीय-अभिनिवेश। तेथेंच कीं या भयासी प्रवेश। म्हणोनि जेथें न भय लवलेश। तें निर्विशेष पद सेवा।।३७।। शुद्धप्रेम-मलयागर। लावा तयाचितया भाळावर। नेसवा भावार्थ-पीतांबर। दावील विश्वंभर निजभक्तां।।३८।। दृढ श्रद्धेचें सिंहासन। अष्टभावमंडित पूर्ण। आनंदाश्रुजलें स्नपन। सद्यः प्रसन्न प्रकटेल।।३९।। भक्ति-मेखळा कटीभोंवती। बांधोनि आकळा तयाप्रती। सर्वस्वाचें निंबलोण प्रीतीं। करा मग आरती ओंवाळा।।४०।। कोण्याही कार्याचा प्रविलय। होई धरूनि अस्तित्वाश्रय। खड्यानें घट फोडिला जाय। निवृत्त होय आकारचि।।४१।। घटास्तित्वांश लवमात्रही। नाहीं ऐसा होत नाहीं। फुटक्या खापऱ्यांचियाही ठायीं। अनुवृत्ति होई घटाची।।४२।। म्हणूनि कार्याचें जें प्रविलापन। तें अस्तित्वनिष्ठ चिरंतन। म्हणूनि कोणाचेंही देहावसान। नव्हे पर्यवसान शून्यत्वीं।।४३।। कार्य न कारणाव्यतिरिक्त। झालें व्यक्त जरी अव्यक्त। तरी तें सदैव सदन्वित। हें तों सुप्रतीत

सर्वत्र।।४४। सूक्ष्मतेचिया न्यूनाधिक्याची। परंपराही दर्शवी हेंचि। स्थूलकार्यविलयीं साची। सूक्ष्मकारणचि अवशिष्ट।।४५।। तयाचाही विलय होतां। त्याहूनि सूक्ष्म अवशिष्ट राहतां। सकलेंद्रिय-मन-बुद्धि-ग्राहकता। पावे विकलता ग्रहणार्थीं।।४६।। तात्पर्य बुद्धि ही जेथें ठके। येथेंचि मूर्त अमूर्तीं ठाके। परी त्याचा न सद्भाव झांके। सन्मात्र झळके सर्वत्र।।४७।। बुद्धि कामास देई आश्रय। म्हणोनि तिचा होतां विलय। तात्काळ होई आत्मोदय। पडे अक्षय पद ठायीं।।४८।। अविद्या माया काम कर्म। हेच मुख्य मृत्यूचे धर्म। होतां या सर्वांचा उपरम। होई उपशम बंधाचा।।४९।। होतां सर्व बंधननाश। प्रकटे आत्मा अप्रयास। जैसा मेघ जाण्याचा अवकाश। स्वयंप्रकाश चमके रवि।।५०।। शरीर मी, हें माझें धन। या नांव दृढ 'देहाभिमान'। हेंचि हृदयग्रंथिनिबंधन। दुःखाधिवेशन मायेचें।।५१।। जरी हा देह एकदां निमाला। कर्मबीजें देहांतर लाधला। तें बीज निःशेष जाळावयाला। चुकला कीं आला पुनर्जन्म।।५२।। पुनश्च बीजांचे वृत्त होती। वासनाबीजें जे देहांतरप्राप्ति। ऐसें हें चक्र अव्याहतगति। वासना निमती तोंवरी।।५३।। कामांचा जैं समूळ विनाश। तैसा हृदयग्रंथिनिरास। तैंच अमर मर्त्य मनुष्य। हाच उपदेश वेदांतीं।।५४।। धर्माधर्मविहित स्थिती। जिये नाम 'विरजा' वदती। अविद्याकामनिर्मूलनकर्ती। जेथें न लव गति मृत्यूतें।।५५।। वासनांचा परित्याग। तोच ब्रह्मानंदाचा योग। 'निरालेख्या' त्या शब्दप्रयोग। वाचाविनियोग 'अनिर्वाच्या'।।५६।। झालिया परब्रह्मसंवित्ति। तीच सकलानिष्टनिवृत्ति। तीच मनेप्सित इष्टप्राप्ति। हें श्रुतिस्मृतिप्रामाण्य।।५७।। 'ब्रह्मविदाप्नोति परं'। हेंच ब्रह्मानंदसाध्य चरम। याहूनि अन्य काय परम। ''तरति शोकमात्मवित्''।।५८।। संसारार्णव तमोमूळ। पावावया परकूल। ब्रह्मज्ञानचि उपाय निखळ। साधन सकळ प्राप्तीचें।।५९।। पूर्ण श्रद्धा आणि धीर। हेचि मूर्त उमा-महेश्वर। मस्तकीं नसतां यत्कृपाकर। दिसे न विश्वंभर हृदयस्थ।।६०।। वदले साईनाथ गुरुवर्य। उद्गार ज्यांचे अमोघवीर्य। पाहिजे निष्ठेचें अल्प धैर्य। महदैश्वर्य पावाल।।६१।। असन्मात्र अवघें दृश्य। हें तों मानणें येतें अवश्य। स्वप्नदर्शन घ्या प्रत्यक्ष। सर्वही अदृश्य प्रबोधीं।।६२।। येथवरी बुद्धीची धांव। येथवरीच आत्म्याशीं सद्भाव। परी जेथें न सदसता ठाव। तो तत्त्वभाव तो आत्मा।।६३।। सदसदादिप्रत्ययवर्जित। अलिंग सर्वविशेषरहित। तेंच शब्दशब्दांतरवर्णित। तेंच सर्वगत गुरुरूप।।६४।। आत्मा सर्वविशेषरहित। जराजन्ममरणातीत। हा पुराण आणि शाश्वत। अपक्षयवर्जित सर्वदा।।६५।। हा नित्य अज पुरातन। सर्वगत जैसें गगन। अनादि आणि अविच्छिन्न। वृद्धिशून्य अविक्रिय।।६६।। जें अशब्द आणि अरूप। अनादि अनंत आणि अमूप। अव्यय अगंध अरस अलेप। कवणातें स्वरूप वर्णवेल।।६७।। परी दिसेना ऐसिया निर्गुणा। नेणतपणें जरी नेणा। ज्ञानें दवडा हा अज्ञानपणा। कधींही न म्हणा शून्य तया।।६८।। काय ती परमहंसस्थिती। श्रीसाईंची निजसंपत्ती। काळें चोरिली हातोहातीं। दिसेल मागुती ती काय।।६९।। धनसुतदारासक्त भक्त। राहूं द्या कीं यांची मात। दर्शना येत योगी विरक्त। राहत आसक्त पदकमलीं।।७०।। काम-कर्म-बंधविमुक्त सर्वैषणा-विनिर्मुक्त। देह-गेहादिकीं विरक्त। जगीं भक्त तो धन्य।।७१।। साई जयाचा दृष्टिविषय। तया वस्त्वंतर दिसेल काय। दृश्यमात्रीं साईंशिवाय। रिकामा ठाय दिसेना।।७२।। वदनीं श्रीसाईचें नाम। हृदयीं श्रीसाईचें प्रेम। तया नित्य आराम क्षेम। रक्षी स्वयमेव साई त्या।।७३।। श्रवणाचीही तीच गत। शब्द नाहीं साईव्यतिरिक्त। घ्राणीं साईपरिमळ भरत। रसना पघळत साईरसें।।७४।। सुखाचें जें सोलींव सुख। काय साईचें सुहास्य मुख। धन्य भाग्याचा तो देख। जेणें तें शब्दपीयुख सेविलें।।७५।। कल्याणाचें निधान। सुखशांतीचें जन्मस्थान। सदसद्विवेकवैराग्यवान। सदा सावधान अंतरीं।।७६।। गोरसेंसीं वत्स धालें। तरी न मायेपासूनि हाले। तैसें मन हें पाहिजे बांधिलें। दावणीं दाविलें गुरुपायीं।।७७।। व्हावया गुरुकृपानुरागा। वंदा तत्पदकमलपरागा। केलिया हितबोधा जागा। अनुभव घ्या गा पदोपदीं।।७८।। यथेच्छ रमतां इन्द्रियार्थीं। अंतरीं ठेवा साईप्रीती। तोचि कामा येईल अंतीं। स्वार्थीं परमार्थीं उभयत्र।।७९।। मंत्रसिद्ध मांत्रिक अंजन। दावी पायाळूस भूमिगत धन। तैसेच गुरुपदरजधूसर नयन। ज्ञानविज्ञान पावती।।८०।। सिद्धांचीं जीं जीं लक्षणें। साधकांचीं तीं तींच साधनें। साध्य कराया दीर्घप्रयत्नें। अभ्यास सुज्ञें करावा।।८१।। दुग्धापोटीं आहे घृत। परी न करितां तें आम्लयुत। नाहीं तक्र ना नवनीत । तेंही अपेक्षित संस्कारा।।८२।। तक्र घुसळल्याविरहित। प्राप्त होईना नवनीत। तेंही न करितां अग्निसंयुक्त। स्वादिष्ट घृत लाभेना।।८३।। पाहिजे संस्कारबलवत्तता। पूर्वाभ्यासें बुद्धिमत्ता। अभ्यासावीण न चित्तशुद्धता। तिजवीण दुर्गमता ज्ञानास।।८४।। व्हावी निर्मळ चित्तवृत्ति। तरीच होईल आत्मप्राप्ति। हातां न ये जों ती स्वरूपस्थिति। भगवद्भक्ति सोडूं नये।।८५।। लागे भगवद्भक्तीचा पाया। मंदिर आत्मज्ञानाचें उठाया। चारी मुक्तींचे कळस झळकाया। ध्वजा फडकाया विरक्तीची।।८६।। रात्रंदिन कर्दमीं लोळतीं। श्वानकरें विष्ठा भक्षितीं। विषयभोग तींही भोगितीं। तीच का महती नरदेहीं।।८७।। होय जेणें चित्तशुद्धि। जेणें अखंड ब्रह्मसिद्धि। तें स्वधर्माचरण आधीं। तप हें साधी नरदेहीं।।८८।। साधुसेवा मुक्तीचें घर। स्त्रैणसंग नरकद्वार। हे पूज्य वृद्धजनोद्गार। विचारार्ह सर्वथा।।८९।। सदा सदाचारसंपन्न। देहनिर्वाहापुरतें अन्न। गृहदारादि स्पृहाशून्य। ऐसा जो धन्य तो साधु।।९०।। जे जे अनिमेष चिंतिती साई। प्रचीतीची पहा नवलाई। स्वयें साई तयांस ध्याई। होऊनि उतराई तयांचा।।९१।। धन्य नामस्मरणमहती। गुरूही भक्तस्मरण करिती। ध्याता प्रवेशे ध्येयस्थिति। पूर्ण विस्मृति परस्परां।।९२।। ''तुम्ही जाणा तुमची करणी। मज तों अहर्निश तुमची घोकणी''। ऐशी बाबांची वाणी। असेल स्मरणीं बहुतांच्या।।९३।। नलगे आम्हां ज्ञानकथा। पुरे हा एक साईचा गाथा। कितीही पापें असोत माथां। संकटीं त्राता हा आम्हां।।९४।। जरी न करवतीं पारायणें। तरी यांतील गुरुभक्ति-प्रकरणें। श्रोतां कीजे हृदयाभरणें। नित्यश्रवणें नेमानें।।९५।। दिवसाच्या कोणत्याही प्रहरीं। वाचील नित्य हें चरित्र जरी। निजगुरुराजसह श्रीहरी। भेटेल निर्धारी भाविकां।।९६।। अखंड लक्ष्मी नांदेल घरीं। वाचितील जें निरंतीं। निदान जो एक सप्ताह करी। दरिद्र दूरी तयाचें।।९७।। हें मी वदतों ऐसें न म्हणा। तेणें संशय घेरील मना। साईच वदवी माझिये वदना। क्लिष्ट कल्पना सोडावी।।९८।। तो हा सकळगुणखाणी। साई निजभक्त कैवल्यदानी। कथा जयाची कलिमलहरणी। श्रोतां श्रवणीं

परिसिजे।।९९।। ऐसिया संतकथांपुढें। स्वर्गसौख्य तें काय बापुडें। कोण ढुंकून पाहील तिकडे। टाकून रोकडें सत्कथन।।१००।। सुख दुःख हे तों चित्तविकार। सत्संग सर्वदा निर्विकार। करी चित्त चैतन्याकार। सुखदुःखां थार देईना।।१०१।। जें सुख विरक्तां एकांतीं। कीं जें भक्ता करितां भक्ति। असो इंद्र कीं चक्रवर्ती। न मिळे कल्पांतीं तयांना।।१०२।। प्रारब्धभोग बलवत्तर। बुद्धि उपजे कर्मानुसार। उपजो परी हे नेमनेमांतर। भक्त तत्पर टाळील।।१०३।। करा कीं भगीरथ उद्योग। चुकेना प्रारब्धकर्मभोग। अवश्यभावित्वाचा योग। तयाचा वियोग अशक्य।।१०४।। जैसें ये दुःख अवांछित। सुखही तैसेंच अकल्पित। देहप्रारब्धाची ही गत। आधीच अवगत संतांस।।१०५।। अखंड तन्नामावर्तन। हेंचि आम्हां व्रत तप दान। वेळोवेळीं शिरडी-प्रयाण। हेंचि तीर्थाटण आमुचें।।१०६।। ''साई साई'' ति नामस्मरण। याच मंत्राचें अनुष्ठान। हेंच ध्यान हेंच पुरश्चरण। अनन्य शरण या जावें।।१०७।। निष्कपट प्रेमानुसंधान। इतुकेंच खरें तयाचें पूजन। मग अंतरीं घ्या अनुभवून। अतर्क्य विंदान तयाचें।।१०८।। पुरें आतां हें गुऱ्हाळ। आम्हां पाहिजे सत्वर गूळ। पूर्वसूचित कथा रसाळ। श्रवणार्थ सकळ उत्सुक।।१०९।। ऐसा श्रोतृवृंदांचा भाव। जाणूनि सूचित कथानवलाव। अवरिला हा ग्रंथगौरव। अवधानसौष्ठव राखाया।।११०।। काव्यपदबंधव्युत्पत्ती। नेणें मी पामर मंदमती। करधृत लेखणी धरोनि हातीं। साईच लिहविती तें लिहितों।।१११।। साई नसता बुद्धिदाता। तरी मी कोण चरित्र लिहिता। त्याची कथा तोचि वदविता। आणीक लिहविताही तोच।।११२।। असो आतां कथानुसंधान। चावडी हंडी प्रसाद कथन। करूं म्हणूनि दिधलें आश्वासन। कथानिरूपण तें परिसा।।११३।। आणीकही तदंगभूत। अथवा दुजिया कथा ज्या स्मरत। त्या त्या सांगूं श्रोतयांप्रत। त्या सावचित्त परिसाव्या।।११४।। धन्य साईकथांचा नवलाव। धन्य धन्य श्रवणप्रभाव। मननें प्रकटे निजस्वभाव। थोरावे सद्भाव साईपदीं।।११५।। आतां आधीं चावडीवर्णन। समारंभाचें करूं दिग्दर्शन। बाबा करीत एकांतरा शयन। चावडीलागून नियमानें।।११६।। एक रात्र मशिदींत। दुजी क्रमीत चावडीप्रत। ऐसा हा क्रम बाबांचा सतत। समाधीपर्यंत चालला।।११७।। पुढें एकूणीसशें नऊ सन। दहा डिसेंबर तैंपासून। चावडीमाजीं साईंचें अर्चन। भजन पूजन हों लागे।।११८।। तो चावडीचा समारंभ। यथामति करूं आरंभ। करील साई कृपासंरंभ। तडीच विश्वंभर नेईल।।११९।। चावडीची येतं रात। भजनमंडळी मशिदीं येत। भजन दोन प्रहरपर्यंत। मंडपांत चालतसे।।१२०।। मागें रथ शोभायमान। दक्षिणांगीं तुलसीवृंदावन। सन्मुख बाबा स्थानापन्न। मध्यें भक्तजन भजनार्थी।।१२१।। हरिभजनी जयां आदर। ऐसे भक्त नारी नर। सभामंडपीं येऊनि सत्वर। भजनतत्पर ठाकती।।१२२।। कोणी करीं घेऊनि टाळ। कोणी चिपळिया करताळ। कोणी मृदंग खंजिरी घोळ। भजनकल्लोळ मांडीत।।१२३।। साईसमर्थ चुंबकमणी। निजसत्तेचिया आकर्षणीं। जडलोहभक्तां लावूनि ओढणी। नकळत चरणीं ओढींत।।१२४।। हलकारे दिवट्या पाजळती अंगणीं। तेथेंच पालखी शृंगारिती कोणी। द्वारीं सज्ज वेत्रपाणी। करीत ललकारणी जयघोष।।१२५।। चव्हाट्यावरी मखरें तोरणें। वरी अंबरीं झळकतीं निशाणें। नूतन वस्त्रें दिव्याभरणें। बालकें भूषणीं शृंगारिली।।१२६।। मशिदीचिया परिसरीं। उजळत दीपांच्या बहु हारी। वारू श्यामकर्ण अंगणद्वारीं। पूर्ण शृंगारीं विराजत।।१२७।। इतुक्यांत तात्या पाटील येत। घेऊनियां मंडळी समवेत। बाबांपाशीं येऊनि बैसत। निघाया उद्यत बाबांसवें।।१२८।। बाबा जरी तयार असत। तात्या पाटील येईपर्यंत। जागचे जागीं बैसूनि राहत। वाट पाहत तात्यांची।।१२९।। जेव्हां कांखेंत घालूनि हात। तात्या पाटील बाबांस उठवीत। तेव्हांच बाबा निघाया सजत। चावडीप्रत तेथुनी।।१३०।। तात्या बाबांस म्हणत मामा। ऐसा परस्पर तयांचा प्रेमा। ऐशा तयांच्या आत्मधर्मा। नाहीं उपमा द्यावया।।१३१।। अंगांत नित्याची कफनी। सटका आपुला बगलेस मारुनी। तमाखू आणि चिलीम घेऊनी। फडका टाकुनी स्कंधावर।।१३२।। बाबा जंव ऐसे तयार। घालिती तात्या अंगावर। जरीकांठी शेला सुंदर। करिती शिरावर सारिखा।।१३३।। बाबा मग पाठील भिंतीतळीं। असे पडली सर्पणाची मोळी। तदग्रीं दक्षिणपादांगुळीं। हालवीत ते स्थळीं क्षणभर।।१३४।। लगेच तेथील जळती जोत। स्वयें मारुनी दक्षिण हात। आधीं साई बुझावीत। मागूनि निघत चावडीतें।।१३५।। साई निघतां जावया। वाद्यें लागत वाजावया। नळे चंद्रज्योती हवया। प्रकाशती दिवटि चौपासीं।।१३६।। कोणी वर्तुळ धनुष्याकृती। शिंगें कर्णे तुताऱ्या फुंकिती। कोणी तास झांज वाजविती। नाहीं मितीं टाळकरियां।।१३७।। मृदंग वीणा झणत्कारीं। साईनामाचिया गजरीं। भजनसमवेत हारोहारी। प्रेमें नरनारी चालत।।१३८।। दिंडी पताका झेलीत। कोणी गरुडटके मिरवीत। नाचत उडत भजन करीत। निघत मग समस्त जावया।।१३९।। अति आनंद सकल लोकां। घेऊनि निघती दिंड्या पताका। तासे तुतारे कर्ण्यांचा दणका। जयकार थयकार वारूचा।।१४०।। ऐसिया वाजंतरांचे गजरीं। मशिदींतूनि निघे स्वारी। भालदार देत ललकारी। पायरीवर बाबा जों।।१४१।। टाळ झांज मृदंग मेळीं। कोणी वीणा कोणी चिपळी। भजन करीत भक्तमंडळी। सुखसमेळीं ते स्थानीं।।१४२।। टके पताका घेऊनि करीं। भक्त चालती आनंदनिर्भरीं। दुबाजू दोन चवरधरी। पंखे करीं वीजिती।।१४३।। शेले दुशेले एकेरी। पायघड्या मार्गांत अंथरिती। बाबांस हातीं धरोनि चालविती। चवऱ्या ढाळिती तयांवरी।।१४४।। तात्याबा वाम हस्त धरी। म्हाळसापति दक्षिण करीं। बापूसाहेब छत्र शिरीं। चालली स्वारी चावडीसी।।१४५।। आघाडी घोडा तो ताम्रवर्ण। नाम जयाचें श्यामकर्ण। घुंघुरें झणत्कारितीं चरण। सर्वाभरणमंडित जो।।१४६।। वेत्रपाणी पुढें चालत। साईनामाचा ललकार करीत। छत्रधारी छत्र धरीत। चवऱ्या वारीत चवरधर।।१४७।। ताशे वाजंत्रें वाजत। भक्त जयजयकारें गर्जत। ऐसा भक्तसंभार चालत। प्रेमें पुकारत भालदार।।१४८।। हरिनामाचा एकचि गजर। टाळ झांज मृदंग सुस्वर। सवें तालावर भक्तसंभार। गर्जत ललकारत चालती।।१४९।। ऐसा भजनीं भक्तसंभार। होऊनियां आनंदनिर्भर। वाटेनें साईंचा जयजयकार। करीत चव्हाट्यावर ठाकत तैं।।१५०।। टाळ झांज ढोल घोळ। वाद्यें वाजतीं अति तुंबळ। साईनामाचा एकचि कल्लोळ। भजन प्रेमळ मौजेचें।।१५१।। सवें चालती नारी नर। सर्व भजनानंदी निर्भर। करीत साईनामाचा गजर। नादें अंबर कोंदाटे।।१५२।। गगन गर्जें वाजंतरीं। प्रेक्षकसमुदाय प्रसन्न अंतरीं। ऐसी प्रेक्षणीय

चावडीची स्वारी। शोभा साजिरी अनुपम्य।।१५३।। अरुणसंध्यारागें नभा। जैसी तप्तकांचनप्रभा। तैसी जयाची श्रीमुखशोभा। सन्मुख जैं उभा चावडीच्या।।१५४।। ते समयींची ती मुखशोभा। पसरली जणूं बालारुणप्रभा। केवळ चैतन्याचा गाभा। कोण त्या लाभा टाळील।।१५५।। धन्य ते समयींचे दर्शन। मुखप्रभा आरक्तवर्ण। उत्तराभिमुख एकाग्र मन। करी पाचारण जणुं कोणा।।१५६।। ताशे वाजंत्र्यांचा गजर। महाराज आनंदनिर्भर। करिती अधोर्ध्व दक्षिणकर। वरचेवर तेधवां।।१५७।। रौप्यताटीं कुसुमनिकर। घेऊनि दीक्षित भक्तप्रवर। पुष्पवृष्टी सर्वांगावर। करीत वरचेवर ते समयीं।।१५८।। साईंचिया मस्तकावरती। गुलाबपुष्पें गुलालमिश्रिती। काकासाहेब उधळीत राहती। प्रेमभक्तीसंयुक्त।।१५९।। ऐशा जंव त्या पुष्पकाळिका। गुलालयुक्त उधळिती काका। तासे झांज टाळांचा ठोका। एकचि कडाका वाद्यांचा।।१६०।। ग्रामलोक बाबांचे भक्त। दर्शना येती प्रीतियुक्त। मुखचर्या अरुणरक्त। अभिनव सुव्यक्त ते वेळीं।।१६१।। पाहोनियां तो तेजविलास। प्रेक्षकनेत्र पावती विकास। प्रेमळां मना होई उल्हास। भवसायासनिवृत्ति।।१६२।। अहा तें दिव्य तेज अद्‌भुत। शोभे जैसा बाल भास्वत। सन्मुख ताशे कहाळा गर्जत। उभे राहत बहुसाल।।१६३।। करूनि सतत खालीं वर। हेलकावीत दक्षिण कर। उदङ्‌मुख एका स्थळावर। अर्धप्रहरपर्यंत।।१६४।। पीतवर्ण केतकी गाभा। किंचित् आरक्त मुखप्रभा। जिव्हा न वर्णूं शके ती शोभा। नेत्रेंच लाभा सेवावें।।१६५।। तितुक्यांत जेव्हां कां म्हाळसापती। संचार होऊनि नाचूं लागती। तेव्हां ही बाबांची एकाग्र स्थिती। पाहतां चित्तीं आश्चर्य।।१६६।। दक्षिणांगी उभा भगत। अंचल बाबांचा करें धरीत। वामांगीं तात्या कोते चालत। घेऊनि हस्तांत कंदील।।१६७।। काय मौजेचा तो उत्सव। भक्तिप्रेमाचें तें गौरव। पाहावया तयाचा नवलाव। अमीर उमराव एकवटती।।१६८।। निजतेजें घवघवीत। मुखचंद्र सोज्ज्वळ आरक्त। अवर्णनीय शोभा शोभत। स्वानंदपूरित जननयन।।१६९।। हळूहळू चालती वाटे। भक्तसमुदाय दुबाजू थाटे। अनिवार भक्तिप्रेम दाटे। स्वानंद कोंदाटे घनदाट।।१७०।। आतां पुढें ऐसा सोहळा। कोणीही पाहूं न शके डोळां। गेले ते दिवस आणि ती वेळा। मनासी विरंगुळा स्मरणेंच।।१७१।। वाजतीं वाजंत्रीं अपार। मार्गीं करिती जयजयकार। नेऊनि चावडीसी आसनावर। दिव्योपचार अर्पिती।।१७२।। वरी बांधीत शुभ्र वितान। हंड्या झुंबरें शोभायमान। आरसां प्रकाश-परावर्तन। देदीप्यमान देखावा।।१७३।। भक्तमंडळी सर्व मिळून। चावडीतें जाती जमून। तात्याबा मग घालिती आसन। बाबांस धरून बैसवीत।।१७४।। ऐसें तें तयार वरासन। पाठीसी लोडाचें ओठंगण। बाबा होतांच स्थानापन्न। अंगरखा परिधान करवीत।।१७५।। घालीत अंगावर दिव्यांबरें। पूजा करीत हर्षनिर्भरें। करीत आरत्या महागजरें। हारतुरे चढवीत।।१७६।। सुगंध चंदन चर्चून। करीत साईंस करोद्वर्तन। उंच वस्त्रीं अलंकारून। मुकुट घालून पाहत।।१७७।। कधीं सुवर्णमुकुट साजिरा। कधीं शिरपेंची मंदील गहिरा। झळके जयावरी कलगी तुरा। कंठीं हिरा माणिकें।।१७८।। धवळ मुक्ताफळांच्या माळा। घालिती मग तयांच्या गळां। दिवाबत्तीच्या योगें झळाळा। तेजें आगळा पेहराव।।१७९।। सुगंध कस्तूरीरचित काळी। उर्द्धरेषा रेखिती निढळीं। कृष्ण तिलक लाविती भाळीं। वैष्णवकुळीं जेणेंपरी।।१८०।। तो जांभळा मखमाली भरजरी। अंगरखा दों खांद्यांवरी। हळूच मागूनि वरचेवरी। सरकतां सावरीत दोबाजूं।।१८१।। तैसेंच डोईस मुगुटाभरण। अथवा मंदील पालटून। वरचेवरीच धरीत झेलून। हळूच मागून नकळत।।१८२।। हो कां मुकुट अथवा मंदील। स्पर्श होतां फेकूनि देतील। होती जरी ही चिंता प्रबळ। प्रेमकुतूहल निःसीम।।१८३।। साई जो सर्वांतर्ज्ञानी। तो काय नेणे भक्तांची छपवणी। परी तयांचें कौतुक पाहुनी। बुद्‌ध्याच जाणूनि मौन धरी।।१८४।। ब्रह्मानुभवें विराजमान। तयास भरजरी अंगरखा भूषण। निजशांतीनें शोभायमान। तया अलंकरण मुकुटाचें।।१८५।। तरीही नाना परीचे सुरुचिर। बाबांस घालिती अलंकार। कपाळीं टिळक मनोहर। रेखिती केशरमिश्रित।।१८६।। हिरे मोतियांच्या माळा। कोणी तेथें घालिती गळां। कोणी ललाटीं लाविती टिळा। चालवी लीला भक्तांच्या।।१८७।। शृंगार जेव्हां चढती समस्त। मस्तकीं जैं मुकुट विराजित। मुक्ताहार कंठीं झळकत। दिसे अत्युद्‌भुत तैं शोभा।।१८८।। नानासाहेब निमोणकर। धरीत बाबांवर छत्र पांडुर। काठीसवें तें वर्तुलाकार। फिरे झालर समवेत।।१८९।। बापूसाहेब अतिप्रीतीं। गुरुचरण प्रक्षालिती। अर्घ्यपाद्यादि भावें अर्पिती। पूजा करिती यथोचित।।१९०।। पुढें ठेवूनि रौप्यताम्हण। तयांत बाबांचे ठेवूनि चरण। अत्यादरें करीत क्षाळण। करोद्वर्तन मागुतें।।१९१।। घेऊनि केशराची वाटी। मग लावीत हस्तां उटी। तांबूल अर्पीत करसंपुटीं। प्रसन्न दृष्टी साईंची।।१९२।। बाबा जंव गादीस बैसत। तात्याबादि उभेच ठाकत। हातीं धरूनि बाबांस बैसवीत। आदरें नमित तच्चरणां।।१९३।। निर्मळ चावडी भूमिका शुद्ध। घोटीव आणि स्फटिकबद्ध। मिळणीं मिळती आबालवृद्ध। प्रेमें निबद्ध श्रीपदीं।।१९४।। होतां गादीवर विराजमान। बसतां तक्क्यास ठेंकून। चवरी चामर आंदोलन। वीजिती व्यजन दोबाजूं।।१९५।। माधवराव तमाखू चुरिती। चिलीम तात्काळ तयार करिती। देती तात्याबांचे हातीं। तात्याबा फुंकिती आरंभीं।।१९६।। तमाखूची ज्वाला निघतां। तात्याबा देत बाबांचे हातां। बाबांचा प्रथम झुरका संपतां। मग ती भगतांस अर्पीत।।१९७।। मग ती चिलमी संपे तोंवर। इकडूनि तिकडे वर्तुलाकार। भगत शामा तात्याबरोबर। वरचेवर भ्रमतसे।।१९८।। धन्य ती निर्जीव वस्तु परी। काय तिचिया भाग्याची थोरी। आम्हां सजीवां न तिची सरी। सेवा ती खरी तियेची।।१९९।। तपश्चर्या ही महाकठिण। लाथां तुडविलें बाळकपण। पुढें सोसूनि शीतोष्णतपन। अग्नींत तावून निघाली।।२००।। भाग्यें बाबांचें करस्पर्शन। पुनश्च धुनीमाजीं भर्जन। मागुती गैरिका उटी चर्चन। मुखचुंबन तैं लाधे।।२०१।। असो कर्पूर केशर चंदन। करिती उभयहस्तां विलेपन। गळां सुमनमाळा घालून। गुच्छावघ्राणन करविती।।२०२।। सदा जयाचें सुहास्यवदन। अति सप्रेम सदय अवलोकन। तयास काय शृंगाराभिमान। राखिला हा मान भक्तांचा।।२०३।। जया अंगीं भक्तीचीं लेणीं। शृंगारिला जो शांतिभूषणीं। तया या लौकिकी माळामणी। अलंकरणीं काय होत।।२०४।। कीं जौ वैराग्याचा पुतळा। तयास किमर्थ पाचूंच्या माळा। परी अर्पितां ओढवी गळा। भक्तांचा सोहळा पुरवी तो।।२०५।। स्वर्णपाचू दिव्यहार। गळां विराजती मुक्तासर। अष्टाष्ट षोडश जयांचे पदर। अभिनव पुष्करमिश्रित।।२०६।। जाई-जुई-तुलसीमाळा। आपाद जयाचे रुळती

गळां। मुक्तकंठा कंठनाळा। मिरवी झळाला अपूर्व।।२०७।। सवें पाचूचा हेमहार। सुवर्णपदक हृदयावर। निढळीं शाम तिलक सुंदर। अति मधुर शोभा दे।।२०८।। तयास काय म्हणावें फकीर। भासे सतेज वैष्णवप्रवर। वरी डोलती छत्रचामर। शेला जरतार शिरीं शोभे।।२०९।। बहुधा जोग प्रेमनिर्भरीं। मंगलवाद्यांचिया गजरीं। पंचारती घेऊनि करीं। बाबांवरी ओवाळीत।।२१०।। पंचोपचार पूजासमेत। घेऊनि पंचारत घवघवित। नीरांजन कर्पूर वात। ओंवाळीत बाबांस।।२११।। मग ही आरतीं जेव्हां संपत। एकेक एकेक सकळ भक्त। बाबांस करोनि साष्टांग प्रणिपात। निघूनि जात घरोघर।।२१२।। चिलीम अत्तर गुलाबपाणी। देऊनि बाबांची अनुज्ञा घेऊनी। तात्याबा निघतां जावया निजसदनीं। म्हणावें बाबांनीं ''सांभाळ मज''।।२१३।। ''जातोस जा परी रात्रीमाजी। मधून मधून खबर घे माझी''। बरें हो म्हणून मग तात्याजी। चावडी त्यजी जाई घरीं।।२१४।। ऐसे लोक जातां समस्त। बाबा स्वहस्तें गांठोडें सोडीत। धोतरांच्या घड्या पसरीत। स्वहस्तें रचित निजशेज।।२१५।। साठ पासष्ट शुभ्र चादरी। घडिया मांडूनियां पुढारी। स्वयें तयांच्या रचूनि हारी। पहुडती वरी मग बाबा।।२१६।। ऐसिया चावडीची परी। इत्थंभूत झाली इथवरी। आतां कथा जी राहिली दुसरी। अध्यायांतरीं वर्णिजेल।।२१७।। तरी श्रोतां कीजे क्षमा। अगाध या साईंचा महिमा। संक्षिप्त वदतां राही न सीमा। गुरुत्वधर्मा पावे तो।।२१८।। आतां साईंची हंडीची कथा। आणीक ज्या ज्या राहिल्या वार्ता। पुढील अध्यायीं कथीन समस्ता। सादरचित्ता असावें।।२१९।। अखंड गुरुस्मरण स्वार्थ। तोच हेमाडा निजपरमार्थ। गुरुचरणाभिवंदनें कृतार्थ। चारीही पुरुषार्थ त्यापोटीं।।२२०।। स्वस्ति श्रीसंतसज्जनप्रेरिते। भक्तहेमाडपंतविरचिते। श्रीसाईसमर्थसच्चरिते। चावडीवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः संपूर्णः।।

।। श्रीसद्गुरुसाईनाथार्पणमस्तु।। शुभं भवतु।।